श्रमण-परम्परा का वैशिष्ट्य

प्रो. दयानन्द भार्गव

श्रमण-परम्परा निवृत्ति प्रधान है, किन्तु प्रवृत्ति की निषेधक नहीं है। इसमें अशुभ से निवृत्ति एवं शुभ में अथवा संयम में प्रवृत्ति की जाती है। यह तथ्य गुप्ति एवं समिति की साधना में अन्तर्निहित है। श्रमण-परम्परा की निवृत्तिपरक दृष्टि के महत्त्व का प्रतिपादन प्रो. भार्गव साहब ने पैनी आध्यात्मिक दृष्टि से कर उसका वैदिक परम्परा से भेद भी स्पष्ट कर दिया है। निवृत्ति को आन्तरिक जागरूकता के रूप में निरूपित कर प्रो. भार्गव साहब ने श्रमण-परम्परा का महत्त्व स्थापित किया है। -सम्पादक

भारत में श्रमण-बाह्मण संस्कृति आज गंगा-यमुना की भाँति इस प्रकार भारतीय संस्कृति के सङ्गम में मिल चुकी हैं कि दोनों का पृथक्-पृथक् वैशिष्ट्य अङ्कित करना लगभग दुस्सम्भव सा ही हो गया है। मेरी समझ में इन दोनों का दूध-पानी की भाँति मिल जाना ठीक ही हुआ, अन्यथा भारतीय संस्कृति इतनी बहुरंगी और समृद्ध न हो पाती। श्रमण-ब्राह्मण तो ऐतिहासिक नामकरण है, दार्शनिक दृष्टि से तो निवृत्ति-प्रवृत्ति कहना ठीक होगा। बिना निवृत्ति के प्रवृत्ति और बिना प्रवृत्ति के निवृत्ति का दर्शन दुर्लभ ही है। जैन परम्परा में भी अयोग केवली तो चरम स्थिति ही है; उसके पहले योग बना ही रहता है। योग है तो प्रवृत्ति है ही।

अनेकान्त का सिद्धान्त दो विरोधी ध्रुवों के बीच समन्वय पर बल देता है। महर्षि अरविन्द के अनुसार सभी समस्यायें मूलतः दो विरोधी अवधारणाओं के बीच समन्वय स्थापित करने की समस्यायें हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच भी समन्वय स्थापित करने की समस्या को हल करने का प्रयत्न भारतीय दर्शन के इतिहास में प्रारम्भ से ही होता रहा है। जैन परम्परा में जिन-कल्पी व्यवस्था में निवृत्ति को बहुत अधिक महत्त्व दे दिया गया। वर्तमान युग में उस व्यवस्था को अव्यावहारिक मानकर स्थविर कल्प को ही व्यावहारिक माना गया। उधर दिगम्बर परम्परा में ऐसा कोई भेद नहीं और एक ही प्रकार की मुनि-चर्या का विधान है जो श्वेताम्बर परम्परा की अपेक्षा निवृत्ति पर अधिक बल देती प्रतीत होती है। वैदिक परम्परा में संन्यासी अनेक प्रकार के बताये गयें हैं- हंस, परमहंस, अवधूत इत्यादि। डॉक्टर हरदत्त शर्मा ने अपने **Brahamanical Contribution to asceticism** नामक शोधग्रन्थ में इन अनेक प्रकार के संन्यासियों की चर्या का उल्लेख किया है। वहाँ भी हमें प्रवृत्ति-निवृत्ति के बलाबल का तारतम्य दृष्टिगोचर होता है।

अभिप्राय यह है कि मनुष्य का मन प्रवृत्ति-निवृत्ति के द्वन्द्व में सदा से ही झूलता रहा है। कारण यह है कि मनुष्य की अनेक आवश्यकतायें ऐसी हैं- आहार, निद्रा, सुरक्षा आदि -जिनकी पूर्ति प्रवृत्ति से ही होती है। उधर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रवृत्ति के संघर्ष से श्रान्ति होती है तो उससे त्राण पाने के लिये मनुष्य निवृत्ति की ओर झुकता है। किन्तु मनुष्य की मूलभूत आवश्यकतायें उसे फिर प्रवृत्ति में ले जाती हैं। यह स्थिति सामान्य व्यक्ति की है। इस स्थिति को लेकर जब दार्शनिक मत निर्मित होने लगे तो प्रवृत्ति-निवृत्ति के तारतम्य को लेकर अनेक सम्प्रदाय बने और अभी भी बनते रहते हैं।

वेदों का धर्म प्रवृत्ति-प्रधान था तो उसी परम्परा में निवृत्ति-प्रधान उपनिषद् भी आये। इन दोनों की आवश्यकता को समझते हुए ज्ञान-कर्म के सन्तुलन पर भी बल दिया गया, किन्तु आचार्य शङ्कर ने ज्ञान-कर्म के विरोध को अपरिहार्य मानकर ज्ञान की उपादेयता और कर्म की हेयता बतायी तो शाङ्कर वेदान्त निवृत्ति-प्रधान हो गया और इसलिये शङ्कराचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध भी कहा गया। इसे एक प्रकार से एक ब्राह्मण परम्परा के आचार्य पर श्रमण होने का आरोप समझा जा सकता है। इसके विपरीत ब्राह्मण परम्परा में ही पूर्वमीमांसा कर्म-प्रधान है। यह हम इसलिये कह रहे हैं कि ब्राह्मण श्रमण के बीच कोई व्यावर्तक विभाजक रेखा खींचने की कोशिश सत्य के बहुत निकट नहीं है।

प्रवृत्ति धर्म की अति के उदाहरण इस्लाम में मिलते हैं जहाँ बकरा-ईद पर पशुओं की बलि देना एक धार्मिक कृत्य समझा जाता है। हिन्दुओं में भी काली मां के सम्मुख पशुबलि दी जाती रही है, और अभी भी कहीं-कहीं दी जाती है। तान्त्रिकों के पञ्च मकार के सेवन की बात वाममार्ग के नाम से प्रसिद्ध है। अभिप्राय यह है कि निवृत्ति मार्गी जिसका निषेध करते रहे उसका विधान करने वाले सम्प्रदाय भी हैं। यह प्रवृत्ति की अति के उदाहरण हैं।

दूसरी ओर निवृत्ति की अति के उदाहरण के रूप में जैन दिगम्बर साधु की चर्या देखी जा सकती है जो वस्त्र का एक टुकड़ा भी शरीर पर रखना उचित नहीं समझती। श्वेताम्बर सम्प्रदाय का निवृत्ति पर इतना अधिक बल नहीं है, किन्तु श्वेताम्बरों में भी स्थानकवासियों की अपेक्षा तेरापन्थियों का झुकाव निवृत्ति की ओर अधिक है। जैन धर्म के इन सम्प्रदायों के बीच परस्पर शास्त्रार्थ भी होता रहा है। हमारा अभिप्राय उस शास्त्रार्थ में जाने का बिल्कुल नहीं है, अपितु केवल यह दिखाने का है कि किस प्रकार मानव-मन प्रवृत्ति-निवृत्ति के बलाबल के तारतम्य के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से सोचता रहा है।

गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन को यह समझाया कि वह युद्ध जैसी प्रखर प्रवृत्ति करते हुए भी स्थितप्रज्ञ के रूप में वह समस्त लाभ प्राप्त कर सकता है जो किसी निवृत्तिमार्गी संन्यासी को मिलते हैं। आजकल अनेक संन्यासी लोकसभा का चुनाव लड़ने जैसी प्रवृत्ति करते दिखायी देते हैं। बौद्धधर्म में मध्यम प्रतिपदा के नाम से निवृत्ति-प्रवृत्ति के बीच मध्यम मार्ग अपनाने की बात कही जाती है।

विषय का और भी अधिक विस्तार किया जा सकता है। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि प्रवृत्ति-निवृत्ति के बीच एक अति से लेकर दूसरी अति के बीच अनेकानेक मार्ग इस देश में उत्पन्न हुए। सबका अपना-अपना तर्क है। रुचि-भेद के कारण इन मार्गों की विविधता बनी रहने वाली है। इनमें निवृत्ति की ओर झुकी परम्परा श्रमण

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कहलाती है। कोई भी परम्परा निवृत्ति के महत्त्व को नकार नहीं सकती। आखिर परम्परा न केवल विधि से बनती है न केवल निषेध से। जीवन में दोनों का महत्त्व भी है। इनमें श्रमण परम्परा का वैशिष्ट्य मुख्य रूप से इस प्रकार है:-

1. प्रवृत्ति मनुष्य में सहज है, उसके सिखाने की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता प्रवृत्ति पर अङ्कुश लगाने की है। श्रमण परम्परा यही कार्य करती है। निरङ्कुश प्रवृत्ति से तो सभ्य समाज बन ही नहीं सकता।
2. हमारे जीवन का बाह्यपक्ष ही नहीं है, आन्तरिक पक्ष भी है। बाह्यपक्ष तो प्रवृत्ति का विषय है, किन्तु आन्तरिक पक्ष को निवृत्ति द्वारा ही जाना जा सकता है। अतः निवृत्ति के बिना हमारा ज्ञान अधूरा ही रह जाता है।
3. हमारी आवश्यकता केवल शारीरिक ही नहीं है। हमें दृढ़ इच्छा शक्ति तथा न्याय सङ्गत व्यवहार भी चाहिये। इसके लिये संयम चाहिये जो कि निवृत्ति का ही पर्यायवाची है। जैन परम्परा ने अहिंसा, संयम और तप के रूप में धर्म को परिभाषित किया। मूल रूप में धर्म हमें यही सिखाता है।
4. निवृत्ति का अर्थ आन्तरिक जागरूकता है। इस प्रकार की आन्तरिक जागरूकता से मनुष्य पाता है कि उसमें अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान तथा अनन्त शक्ति है। यह जान लेना मनुष्य को सब बन्धनों से मुक्त कर देता है। यह अन्तरात्मा ही जान सकता है। अन्तरात्मा अन्त में परमात्मा हो जाता है।

-1 जे-7, जीवन सुरक्षा फ्लेट्स, सेक्टर 2, विद्याधरनगर, जयपुर (राज.)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org